International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Advancements in Multidisciplinary Research and Analysis – December 2023
Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

शिक्षक के परिप्रेक्ष्य में अनुशासन की अवधारणा

डॉ. लता शर्मा

आचार्य संस्कृत, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर

पूणर्मदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णं उदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
(शान्तिपाठ)

सृष्टि के प्रत्येक कण के अस्तित्व को विराट् पूर्ण परमेश्वर से जोड़ने वाले हम पूर्णता की कितनी सुंदर अवधारणा के वाहक हैं कि यह सम्पूर्ण सृष्टि पूर्ण ब्रह्म ही है। ठसाठस भरा हुआ ब्रह्म। पूर्ण में से पूर्ण को लें लें तो भी पूर्ण ही अवशिष्ट रहेगा। सृष्टि के गहनतम रहस्यों को अपनी अलौकिक प्रतिभा से सुलझाने वाली ऋषि परम्परा का यह उत्कर्ष शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो। इस अनुपम, अलौकिक ज्ञान के आलोक में हमने हजारों वर्ष व्यतीत किये हैं किन्तु गत 500 वर्षों से क्रमशः क्षीण होती इस ज्ञान परम्परा के सूखते स्रोत और विघटित होती अस्मिता से उत्पन्न संकट अब निरन्तर बलवत्तर हो रहा है। वर्तमान में प्रचलित शिक्षा और शिक्षण संस्थाएँ हमारी संस्कृति के अनुकूल चार पुरुषार्थ की अवधारणा को तो छोड़ दीजिए सामान्य आवश्यकताओं को भी पूर्ण करने में असमर्थ हो रही हैं। गत 200 वर्षों में यह दुरावस्था और भी अधिक बढ़ गई है। नकारात्मक तथ्य अनेक हैं। उनके कारण भी अनेक हैं और उन पर चर्चा भी यदा-कदा होती रहती है। आधुनिक समय में शिक्षा में विशेष रूप से बढ़ रही अनुशासनहीनता और मूल्यहीनता ऐसे विषय है जिन्होंने सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया है। वस्तुतः ये ही दो तत्व हैं जो सजीव जगत् में मनुष्य को मनुष्य होना इंगित करते हैं अर्थात् इनका विघटन मनुष्य को पशु समुदाय में पहुँचा रहा है। प्राचीनकालीन गुरुकुल प्रणाली में अनुशासन और मूल्य यही वो महान् तत्व थे जिनहोंने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अविस्मरणीय आयाम प्रदान किये। श्रेष्ठ ऋषि परम्परा और अद्भुत ज्ञान सम्पदा प्रदान की। वेदान्त जैसा दर्शन दिया तो रामायण जैसी शासकीय अवधारणा।

वर्तमान भारतीय शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति में जो भी विसंगतियाँ और अवमूल्यन उत्पन्न हुआ है उसमें अनुशासन एक महत्त्वपूर्ण घटक है। पुरातन ज्ञान परम्परा के आलोक में कतिपय बिन्दु उद्धरणीय हैं जिनकी अनुपालना शिक्षा के क्षेत्र में हमें सकारात्मक सुधार की ओर ले जा सकती हैं।

संवाद -

आज सबसे महत्वपूर्ण घटक जो शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य लुप्त हो रहा है, वह है संवाद। गुरुकुल पद्धति में

दोनों की जीवनचर्या अत्यन्त घुली-मिली थी। वे दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं के लिए परस्पराश्रित थे, किन्तु आज शिक्षक एवं शिष्य के मध्य एक कालांश का सम्बन्ध रह गया है। यह संवादहीनता न तो छात्र का शिक्षक से, न ही शिक्षक का छात्र से पूर्ण परिचय करवा पाती है। यदि शिक्षक छात्र के साथ अधिकाधिक संवाद स्थापित कर पाए तो सम्भव है छात्र उद्दण्डता एवं उच्श्रृंखलता से दूर होकर अपनी समस्याएँ बांट सकें। छात्र को जो भावनात्मक एवं मानसिक प्रश्रय प्राप्त होगा वह उसे विषय के उच्च शिखर की ओर तो ले जाएगा ही नैतिक अवमूल्यन यथा- मादक पदार्थों का सेवन, गुरुजनों के प्रतिअभद्र भाषा का प्रयोग और अन्य छात्रों के साथ द्वेष एवं क्रोधपूर्ण सम्बंध से भी विरत कर सकेगा।

साहचर्य एवं सामंजस्य -

प्राचीन गुरुकुल परम्परा में शिक्षक शिक्षार्थी के साथ साहचर्य एवं सामंजस्य स्थापित करने में महत्वपूर्ण घटक थे शिक्षक की कामना थी-

सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चस्व।

अर्थात् वह शिष्य के साथ साझा भाव से बढ़ना चाहता है। दोनों का तेज दोनों का अध्ययन साझा हो। इस कामना से सम्पन्न शिष्य भी शिक्षक के साथ साझा भाव से लक्ष्योन्मुख होना चाहता है, वह स्वयं के साथ शिक्षक की रक्षा की कामना करता है।

ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारं अवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।

वर्तमान में भी शिक्षक यदि शिक्षार्थी के साथ साहचर्य एवं सामंजस्य का भाव रखें। स्वयं की अपेक्षा शिक्षार्थी के सम्पूर्ण उन्नयन हेतु प्रयासरत होगा तो साहचर्य का भाव स्वतः विकसित होता जाएगा। यह साहचर्य और सामंजस्य अनुशासन और मूल्य दोनों का उपस्कारक होगा। ऐसे शिक्षक जो छात्रों के साथ सामंजस्य को विकसित कर पाते हैं वे छात्रों के मध्य लोकप्रिय होते हैं और इस प्रकार अपने उत्तम आचरण से वे छात्रों के समक्ष आदर्श भूमिका रख सकते हैं, जो छात्रों के लिए प्रेरणादायक होगी।

यथा यथा ही पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम्।
तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लोकसुप्रियः ।।
(गरुड पुराण/आचारअध्यायस्वाध्याय)

स्वाध्याय

स्वाध्याय शिक्षक के जीवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है। शिक्षा पद- अध्ययन एवं अध्यापन से जुड़ा हुआ है। अध्यापन-अध्ययन के बिना श्रेयस् अथवा काम्य नहीं है। स्वाध्याय पद में दो भाव उपस्थित हैं।

प्रथम - विषय का अध्ययन। अध्यापन से पूर्व यदि हम विषय को हृदयङ्गम् कर विचार करते हैं तो पाठ्यसामग्री में नवीनता, रोचकता का आधान कर सकते हैं। नवाख्यान और प्रासंगिकता से यदि विषय को न जोड़ा जाए तो तर्कशक्ति और तुलनात्मक विवेचन से सम्पन्न बुद्धि वाला छात्र शिक्षक और शिक्षा दोनों को त्यागकर अकरणीय कार्य में संलग्न हो जाता है। अतः यह

स्वाध्याय अध्यापन से पूर्व आवश्यक है। स्वाध्याय का दूसरा अर्थ है स्व का अध्ययन अर्थात् आत्म विश्लेषण। यह क्रिया जब तक शिक्षक की जीवनचर्या का अंग नहीं बनेगी तब तक वह न तो स्वयं को न छात्रों को लक्ष्योन्मुख कर पाएगा। स्वाध्याय अनुशासन स्थापना के साथ नैतिक-शिक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। एतदर्थ आचार्य शिष्य को अपदेश देता है -

वेदामूच्याचार्यो अन्तेवासिनमनुशास्ति ।
सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।
(तैत्तिरियोपनिषद्- अनु. 10)

शिक्षक स्वयं यदि स्वाध्याय नहीं करेगा तो शिष्य को उपदेश भी नहीं दे सकेगा।

उपदेश एवं आचरण की एकरूपता -

मालविकाग्निमित्रम नाटक में कालिदास शिक्षक के लिए आवश्यक तत्व की ओर संकेत करते हैं।

यस्योभयं (क्रिया च संक्रान्ति च) साधु.च शिक्षकाणां धुरिः प्रतिष्ठापयितव्य एव।

शिक्षक के उपदेश और आचरण में किंचित् मात्र भी असंतुलन और समन्वय का अभाव छात्र के मन से शिक्षक की गुरुता को समाप्त कर देता है और उसे दिशाहीन शिक्षा की और अग्रसर करता है। जो वस्तुतः शिक्षा नहीं केवल विषय का स्मरण मात्र है और अन्ततः केवल धनार्जन के लिए उपयोगी। शिक्षक की कथनी व करनी में भेद छात्र के सन्तुलित मर्यादित व्यक्तित्व के निर्माण को समाप्त कर देता है।

स्पष्टतः कक्षा में छात्रों को नियम, शान्ति, विनम्रता का पाठ पढ़ाने वाला शिक्षक कक्षा के बाहर छात्रों को हिंसक, अनुशासनहीन और उग्र आचरण के लिए प्रेरित करता है तो वह स्वयं के कर्तव्य से भी विमुख होता ही है और छात्रों के भविष्य से खिलवाड भी करता है।

यह सत्य है कि पुरुष संकल्पमय है, जैसा संकल्प करने लगता है, फिर वैसा ही आचरण करता है और जैसा आचरण करता है वैसा ही बन जाता है -

क्रतुमयो अयम् पुरुषः स यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते ।

छात्र भी इस स्वल्प से सम्पन्न होता है, केवल उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है, यदि वह उसे प्राप्त हो जाए तो वह स्वयं के संकल्प, पुरुषार्थ और प्रयास द्वारा उत्कर्ष के सोपानों पर चढ़ता हुआ लक्ष्य सिद्धि कर सकता है।

यदि शिक्षक की आत्मिक शक्ति क्रियाशील है, विचारशक्ति अंकुठित है. सत्यं शिवं और सौन्दर्य के प्रति आग्रह है, दृष्टिकोण उदार है, चित्त में दुति का विस्तार है तो वर्तमान व्यवस्थाओं में भी वह गुरु पद को प्राप्त है औरभारतीय परम्परा में इसके उदाहरण एक नहीं अनेकों उपलब्ध हैं। याज्ञवल्क्य, राजा जनक, स्वामी विवेकानन्द, पं. मदन मोहन मालवीय, डॉ. राधाकृष्णन् और डॉ. अब्दुल कलाम आजाद।

अतः इस संकट में भी और आगे भी हमारा आत्मबल, हमारी संस्कृति और हमारी वैचारिक प्रखरता, हमारा पथ-प्रदर्शित करेगी।

तत्सद् ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1] कठोपनिषद् - गीता प्रेस गोरखपुर

[2] कठ उपनिषद - रामकृष्ण मठ, नागपुर

[3] तैत्तिरीयोपनिषद् - जगद्गुरु रामभद्राचार्य

[4] तैत्तिरीय उपनिषद् - आध्यात्म प्रकाश कार्यालय

[5] संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर,लोकभारती प्रकाशन

[6] संस्कृत निबंध मन्दाकिनी - प्रो. आद्याप्रसाद मिश्र,अक्षय वट प्रकाशन

[7] जयतु सुरभारती- पद्मश्री कपिल देव द्विवेदी, विश्व भारती अनुसंधान परिषद

[8] नीतिशतकम् - भर्तृहरि,चौखम्बा प्रकाशन

[9] बृहद् संस्कृत सूक्ति रत्नाकर - डॉ (श्रीमति) प्रीतिप्रभा गोयल, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

[10] सूक्ति मुक्तावली - भीमराजु सत्यनारायण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज